पारस परस

वर्ष-8 अंक-3 जुलाई-सितम्बर, 2018, रजि. नं.: यू.पी. एच.आई.एन./2011/39939 पृष्ठ -40 मूल्य- 25

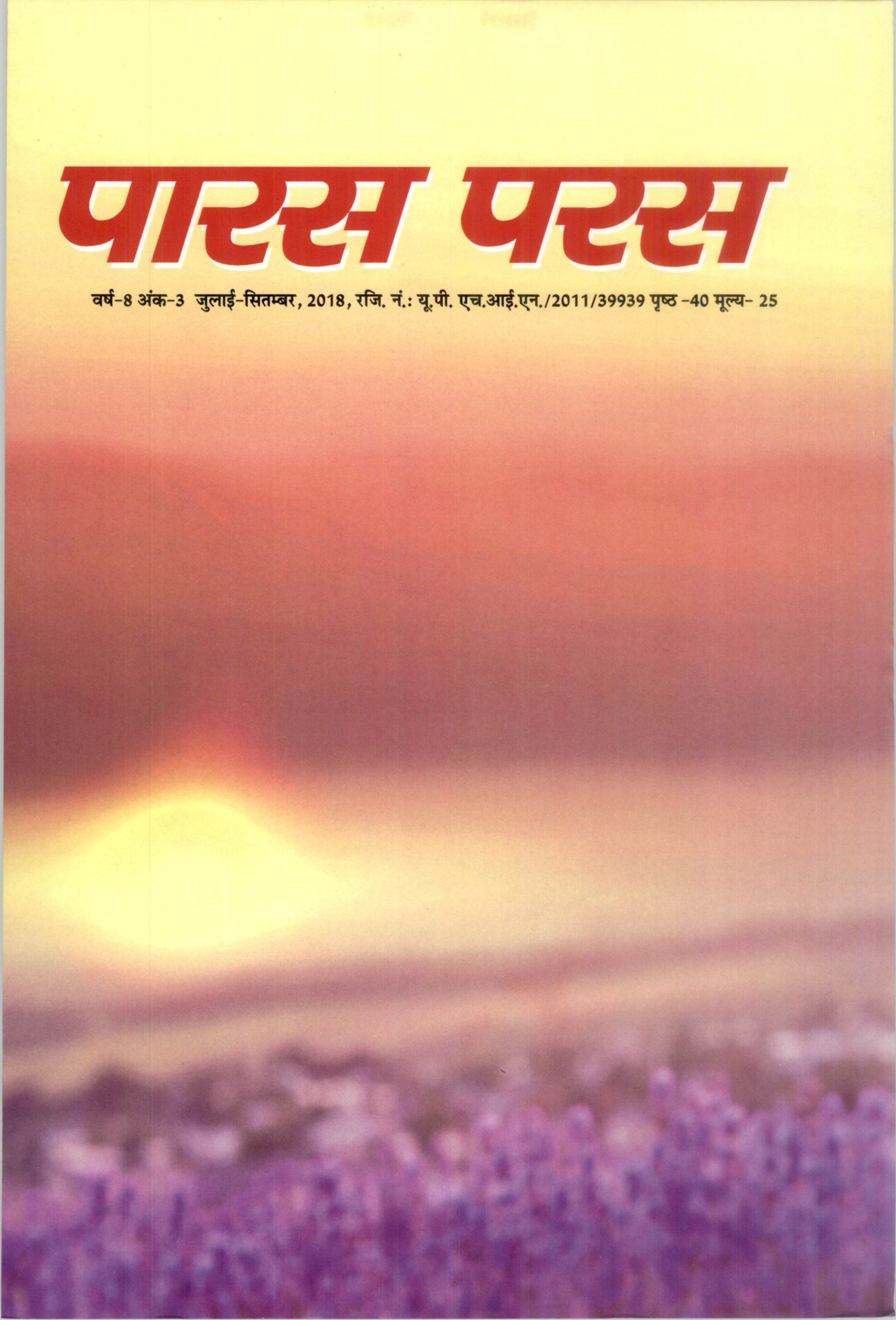

सृजन स्मरण

नेमिचन्द्र जैन

जन्म- 16 अगस्त 1919, निधन- 24 मार्च 2005

आगे गहन अन्धेरा है, मन रुक–रुक जाता है, एकाकी,
अब भी है टूटे प्राणों में किस छवि का आकर्षण बाकी?
चाह रहा है, अब भी यह पापी दिल पीछे को मुड़ जाना,
एक बार फिर से दो नैनों के नीलम–नभ में उड़ जाना।
उभर–उभर आते हैं मन में वे पिछले स्वर सम्मोहन के,
गूँज गए थे पल–भर को बस, प्रथम प्रहर में जो जीवन के।
किन्तु अन्धेरा है यह, मैं हूँ, मुझको तो है आगे जाना,
जाना ही है– पहन लिया है, मैंने मुसाफिरी का बाना।
आज मार्ग में मेरे अटक न जाओ यों, ओ! सुधि की छलना,
है निस्सीम डगर मेरी, मुझको तो सदा अकेले चलना।
इस दुर्भेद्य अन्धेरे के उस पार मिलेगा, मन का आलम,
रुक न जाए सुधि के बाँधों से, प्राणों की यमुना का संगम।
खो न जाए द्रुत से द्रुततर, बहते रहने की साध निरन्तर,
मेरे उसके बीच कहीं रुकने से बढ़ न जाए यह अन्तर।

वर्ष : 8 अंक : 3 जुलाई-सितम्बर, 2018 रजि. नं. : यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस परस

हिन्दी काव्य की विविध विधाओं की त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक
डॉ. एल.पी. पाण्डेय

प्रधान संपादक
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित

संपादक
डॉ. अनिल कुमार

कार्यकारी संपादक
सुशील कुमार अवस्थी

संपादकीय कार्यालय
538 क/1324, शिवलोक
त्रिवेणी नगर तृतीय, लखनऊ
मो. 9935930783
Email: paarasparas.lucknow@gmail.com

लेआउट एवं टाइप सेटिंग
अभ्युदय प्रकाशन
लखनऊ

स्वामी प्रकाशक मुद्रक एवं संपादक डॉ. अनिल कुमार द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ उ.प्र. से मुद्रित तथा ए-1/15 रश्मि, खण्ड, शारदा नगर योजना, लखनऊ उ.प्र. से प्रकाशित।
सम्पादकः डॉ. अनिल कुमार

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय		2
श्रद्धा सुमन		
बाबूजी मेरे आएंगे	डॉ. अनिल कुमार पाठक	4
पुण्य स्मरण		5
कालजयी		
कोई न आया पास मेरे	पारस नाथ पाठक 'प्रसून'	6
आज फिर जब तुमसे सामना हुआ	नेमिचन्द्र जैन	7
आज हैं केसर रंग रंगे वन	गिरिजा कुमार माथुर	8
तुम्हारी मुस्कुराहट के असंख्य	गुलाब शंकर शैलेन्द्र	9
समय के सार्थी		
तूफानों का आगमन	सत्यधर शुक्ल	10
बारिश	जावेद आलम खान	11
प्रयास	डा. नरेश कात्यायन	12
भीड़ से खारिज आदमी	दिलीप दर्श	13
जीवन गति में है	नरेन्द्र मिश्र	14
स्वर्णिम वरण	अखिलेश निगम 'अखिल'	15
मंजिल	रविन्द्र कुमार 'राजेश'	16
तुम्हारी राह	योगेश दयालु	17
उस दिन गिर रही थी नीम की एक पत्ती	उदय प्रकाश	18
गुमशुदगी	लीलाधर मंडलोई	19
बांह सुधि की थाम	चक्रपाणि पाण्डेय	20
विदा	अशोक वाजपेयी	21
तिमिर कहीं कितना गहरा हो	केसरीनाथ त्रिपाठी	22
विस्मृति	कुमार अम्बुज	23
उद्बोधन		
भारत भूमि हमारी	माधव शुक्ल	24
अमर शहीदों का नमन	डा रामाश्रय सविता	25
कलरव		
बोल तोता बोल	राम देव सिंह 'कलाधर'	26
नानी की नाव	हरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय	27
घूम हाथी, झूम हाथी	विद्याभूषण 'विभु'	28
शक्मि हमे दो	मुरारी लाल वर्मा 'बालबंधु'	29
नारीस्वर		
बही एक रसधारा है	डा. मृदुल शुक्ल 'मृदुल'	30
डूबती-उभरती तन्हाइयां	डा. ऋचा सत्यार्थी	31
छोटी सरिता हूं	पुष्पा सुमन	32
नयनों का वृन्दावन	स्नेहा मिश्रा	33
चारो ओर	विद्या तिवारी	34
झांकू-झूंक	डा.शान्तिदेव बाला	35
नावोदित रचनाकार		
होरी अति सुखदायी	कृष्ण कुमार वर्मा	36
आगे आना चाहिए	जगदीश शुक्ल	37
जोगी	केशव तिवारी	38
जीवन-दृष्टि	अवधेश प्रताप सिंह	39
शंखनाद कीजिए	अशोक कुमार पाण्डेय अनहद	40

तस्मै श्री गुरुवे नमः

हमारे व्यक्तित्व का समुचित विकास तभी सम्भव है जब हमें एक सद्गुरु या सच्चे पथप्रदर्शक का सान्निध्य प्राप्त हो। गुरु की महिमा अवर्णनीय व अव्याख्येय है। गुरु को सामान्य रूप से भले ही अन्य समानार्थक प्रतीत होने वाले शब्दों यथा शिक्षक, अध्यापक आदि के रूप में समझा जाए या ग्रहण कर लिया जाए किन्तु गुरु की गुरुता इन समानार्थक शब्दावलियों से भिन्न है। गुरु इहलौकिक एवं पारलौकिक, भौतिक एवं आध्यात्मिक, व्यवहारवादी एवं आदर्शवादी सभी रूपों में व्यक्ति को शीर्षतम स्थान तक पहुँचने हेतु सही दिशा व मार्गदर्शन प्रदान करता है। कबीर ने कहा है:–

"सब धरती कागद करूं, लेखनि सब बनराइ।
सात समुद की मसि करूं, गुरु गुन लिखा न जाइ।"

गुरु के संबंध में कबीर की उक्त साखी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है। मनसा–वाचा–कर्मणा प्रेरणा प्रदान करने वाले सद्गुरु की महिमा अकथनीय है। उसे शब्दों में बाँध पाना या वर्णित कर पाना सम्भव नहीं है।

गुरु का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है। सामान्यतः हम गुरु को ज्ञान–प्रदाता अथवा शिक्षक के रूप में ही समझते हैं और कदाचित् हम ऐसा करते हुए गुरु के स्वरूप को संकुचित कर देते हैं। वास्तविक रूप में किसी भी व्यक्ति का आदि एवं प्रथम गुरु उसकी माँ है जो जन्म के पूर्व से ही उसे कोई न कोई शिक्षा, ज्ञान एवं संस्कार प्रदान करती रहती है और जन्म के पश्चात् संतान माँ से ही सभी मूलभूत बातें सीखता है, ग्रहण करता है और उसी का अनुकरण भी करता है। माँ के साथ ही पिता भी गुरु–स्वरूप है और वह भी गुरु की तरह ज्ञान–विज्ञान का प्रवाह करते हुए संतान का पथ–प्रदर्शन करता है। इसके पश्चात् पारम्परिक गुरु से व्यक्ति का संपर्क होता है और उससे धीरे–धीरे प्रगाढ़ संबंध बनता जाता है। फलस्वरूप व्यक्ति विभिन्न प्रकार की विद्या व ज्ञान का मर्म समझते हुए जीवनपथ पर अग्रसर होता है। यहाँ यह महत्वपूर्ण है कि इन सबके बावजूद भी इन तीनों में किसी को भी कमतर नहीं माना जा सकता है और न ही इनके मध्य किसी तुलना का ही कोई भाव है क्योंकि ये सभी हमारे लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इसीलिए इस संबंध में यह कहना प्रासंगिक होगा कि **"को बड़ छोट कहत अपराधू।"**

गुरु के संबंध में उक्त बातों का उल्लेख करना वर्तमान संदर्भ में इसलिए भी प्रासंगिक है कि आज गुरु, मात्र किताबी ज्ञान बाँट रहा है और वह भी अपने दायित्व का निर्वहन न करते हुए केवल व्यावसायिक रूप से शिक्षा एवं ज्ञान का प्रचार–प्रसार करना चाह रहा है। शिक्षा एवं ज्ञान–विज्ञान के अनेक संस्थान मानवीय संवेदनाओं, मूल्यों, सांस्कृतिक परंपराओं एवं धरोहरों के विपरीत नौनिहालों को दिग्भ्रमित कर रहे हैं और कतिपय संस्थाएं

उनका आर्थिक एवं मानसिक शोषण भी कर रही हैं। उनका कार्य लोकमंगल या लोकभावना से प्रेरित न होकर लेन–देन से प्रभावित हो रहा है। अनेक कोचिंग संस्थाएं प्रतियोगी परीक्षाओं एवं पाठ्यक्रमों के दृष्टिगत संकुचित एवं सीमित ज्ञान बाँट रही हैं। इन सबसे ऐसा व्यक्तित्व तो सृजित हो सकता है जो विभिन्न व्यवस्थाओं के लिए उपयोगी हो किन्तु इससे ऐसा व्यक्तित्व सृजित होना सम्भव नहीं है जो सामाजिक ताने–बाने को बनाये रखे, कोमल पौधों को पल्लवित–पुष्पित करने के लिए अपने स्नेह से सींच सके और समाज में सौमनस्य बनाए रखने के लिये प्रहरी की भूमिका निभा सके। आज ऐसे व्यक्तित्व की आवश्यकता है जिसके लिए मानवीय एवं सामाजिक मूल्य सबसे ऊपर हों और प्रत्येक परिस्थिति में वह इन मानदण्डों पर खरा उतर सके।

अतः हमें पुनः उन संस्थाओं को मजबूत बनाना होगा जिससे सदियों से चली आ रही हमारी सामाजिक संरचना बची रहे, प्रगतिशील तत्वों तथा परंपरागत संस्कारों के मध्य सामंजस्य बना रहे और हमारा समाज **''संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।''** (हम सब एक साथ चलें; एक साथ बोलें; हमारे मन एक हों।) की सकारात्मक दृष्टि के साथ भारतीय संस्कृति व परम्परा का संवाहक बनकर आगे बढ़ता रहे।

यह अंक आप के हाथों में सौंपते हुए अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। इस अंक में जिन भी रचनाकारों की रचनाएं ली गयी हैं, उनके तथा उनके परिवार, प्रकाशक आदि के प्रति हृदय से आभार प्रकट करते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में आप सभी का सहयोग मिलता रहेगा।

शुभकामनाओं के साथ,

डा० (अनिल कुमार)

बाबूजी मेरे आयेंगे

-डॉ. अनिल कुमार पाठक

सुन मेरी सिसकी औ'तड़पन,
बहते आँसू रुकती धड़कन।
वे खुद ही ना रुक पायेंगे,
बाबूजी मेरे आयेंगे।।

खोली जबसे आँखें हमने,
साकार हुए सारे सपने,
तो कैसे अब ठुकरायेंगे?
बाबूजी मेरे आयेंगे।।

अपना भविष्य करके स्वाहा,
सपने में भी पर–हित चाहा,
अब निष्ठुर क्यों हो जायेंगे?
बाबूजी मेरे आयेंगे।।

विश्वास सदा मेरा उन पर,
हैं कृपालु हर पल सब पर,
अब भला हमें क्यूँ तड़पायेंगे?
बाबूजी मेरे आयेंगे।।

बेचैन हृदय की करुण–कथा,
इस पीड़ित मन की मर्म–व्यथा।
सुनकर मर्माहत हो जायेंगे,
बाबूजी मेरे आयेंगे।।

❖❖❖

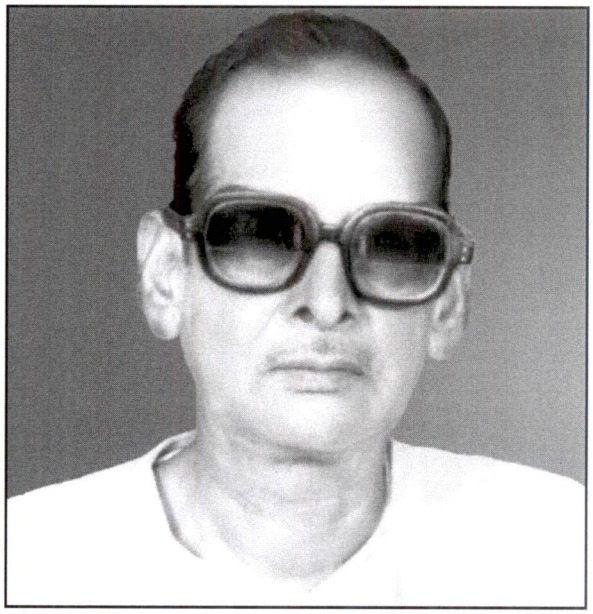

पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'

जन्म– 17 जुलाई 1932
निधन– 23 जनवरी 2008

तुम अनादि हो, तुम अनन्त हो, दिग्दर्शक, प्रेरक, अरिहन्त।
अजर, अमर, हे प्राणतत्व! तुम, कण-कण में व्यापी बसन्त।।

शिक्षाविद् व हिन्दी कविता के सशक्त हस्ताक्षर **स्व0 पारस नाथ पाठक 'प्रसून'** का जन्म उत्तर प्रदेश के जनपद–जौनपुर के गोपालपुर ग्राम में गुरुपूर्णिमा को हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय विद्यालयों से प्राप्त करने के पश्चात उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ, गोरखपुर विश्वविद्यालय तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से विभिन्न उपाधियाँ प्राप्त कीं। वे सर्वोदय विद्यापीठ इण्टर कालेज, मीरगंज, जौनपुर में हिन्दी विषय के प्रवक्ता पद पर कार्यरत रहे।

स्व. **'प्रसून'** की पावन स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए **'पारस परस'** नाम से काव्य–त्रैमासिकी प्रकाशित करने का संकल्प लिया गया जो निर्बाध गति से चल रहा है।

स्वर्गीय 'प्रसून' जी की जयन्ती पर विनम्र श्रद्धांजलि

❖❖❖

कोई न आया पास मेरे

- पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

कोई न आया पास मेरे।।
घिर गई मुझ पर घटायें,
भर गई उर में व्यथायें,
यह हृदय जलने लगा हैं,
जब से नयन निज तुमने हैं फेरे।
कोई न आया पास मेरे।।
मधु प्रतीक्षा में तुम्हारी,
बीत जाती रात सारी,
मैं अकेला हूँ यहाँ पर,
पर न मिलते हाय दर्शन आज तेरे।
कोई न आया पास मेरे।।
भार ले अपना धरा पर,
ताकता निःसहाय हो कर,
पर जलन की कालिमा सी,
नित निराशा की घटा रहती है घेरे।
कोई न आया पास मेरे।।

❖❖❖

आज फिर जब तुमसे सामना हुआ

-नेमिचन्द्र जैन

कितने दिनों बाद आज फिर जब
तुमसे सामना हुआ।
उस भीड़ में अकस्मात ,
जहाँ इसकी कोई आशंका न थी,
तो मैं कैसा अचकचा गया
रँगे हाथ पकड़े गये चोर की भाँति ।
तुरत अपनी घोर अकृतज्ञता का
भान हुआ
लज्जा से मस्तक झुक गया अपने आप ।
याद पड़ा तुमने ही दिया था
वह बोध,
जो प्यार के उलझे हुए धागों को
धीरज और ममता से सँवारता है।
दी थी वह करुणा
जिसके सहारे
आत्मीयों के असह्य आघात सहे जाते हैं।
सह्य हो जाते हैं–
और वह अकुण्ठित विश्वास
कि जीवन में केवल प्रवंचना ही नहीं है।
अन्तर की अकिंचनताएँ प्रतिष्ठित
सहयोगियों की कुटिलता ही नहीं है,
किसी क्षणिक सिद्धि के दम्भ में
शिखर की छाती कुचलने को उद्यत
बैनों का अहंकार ही नहीं है–
जीवन में और भी कुछ है।
तुम्हारी ही दी हुई थी
वह अनन्य अनुभूति।
कि वर्षा की पहली बौछार से
सिर–चढ़ी धूल के दबते ही
खुली निखरने वाली
आकाश की शान्तिदायिनी अगाध नीलिमा।
वर्षों बाद अचानक
अकारण ही मिला
किसी की अम्लान मित्रता का सन्देश,
दूर रह कर भी साथ–साथ एक ही दिशा में
चलते हुए सहकर्मियों का आश्वासन–
ये सब भी तो जीवन में है,
तुमने कहा था ।

यह सब,
न जाने और क्या–क्या
मुझे याद आया
और एक अपूर्व शान्ति से
परिपूर्ण हो गया मैं
जब आज
अचानक ही भीड़ में
इतने दिनों बाद
तुम से यों सामना हो गया
ओ मेरे एकान्त ।

❖❖❖

आज हैं केसर रंग रंगे वन

गिरिजा कुमार माथुर

आज हैं केसर रंग–रंगे वन।
रंजित शाम भी फागुन की,
खिली खिली पीली कली–सी।
केसर के वसनों में छिपा तन
सोने की छाँह–सा
बोलती आँखों में।
पहले वसन्त के फूल का रंग है।
गोरे कपोलों पे हौले से आ जाती
पहले ही पहले के
रंगीन चुंबन की सी ललाई।
आज हैं केसर रंग रंगे
गृह द्वार नगर वन।
जिनके विभिन्न रंगों में है रंग गई
पूनो की चंदन चाँदनी।

जीवन में फिर लौटी मिठास है,
गीत की आखिरी मीठी लकीर–सी।
प्यार भी डूबेगा गोरी–सी बाहों में,
ओठों में आँखों में
फूलों में डूबे ज्यों,
फूल की रेशमी रेशमी छाँहें।
आज हैं केसर रंग रंगे वन।

❖❖❖

तुम्हारी मुस्कुराहट के असँख्य गुलाब

शंकर शैलेन्द्र

महामानव
मेरे देश की धरती पर
तुम लम्बे और मजबूत डग भरते हुए आए,
और अचानक चले भी गए।

लगभग एक सदी पलक मारते गुजर गई,
जिधर से भी तुम गुजरे
अपनी मुस्कुराहट के असंख्य गुलाब खिला गए,
जिनकी भीनी सुगन्ध
हमेशा के लिए वातावरण में बिखर गई है।

तुम्हारी मुस्कान के ये अनगिनत फूल,
कभी नहीं मुरझाएँगे।
कभी नहीं सूखेंगे।

जिधर से भी तुम गुजरे
अपने दोनों हाथों से लुटाते चले गए।
वह प्यार,
जो प्यार से अधिक पवित्र है!
वह ममता,
जो माँ की ममता से अधिक आर्द्र है।
वह सहानुभूति,
जो तमाम समुद्रों की गहराइयों से अधिक गहरी है!
वह समझ,
जिसने बुद्धि को अन्तरिक्ष पार करने वाली
नई सीमाएँ दी हैं।

अच्छाई और बुराई से बहुत ऊपर
तुम्हारे हृदय ने पात्र–कुपात्र नहीं देखा
पर इतना कुछ दिया है इस दुनिया को
कि सदियाँ बीत जायेंगी
इसका हिसाब लगाने में !
इसका लेखा–जोखा करने में !
तुमने अपने आपको साधारण इनसान से
ऊपर या अधिक कभी नहीं माना ।
पर यह किसे नहीं मालूम
कि तुम्हारे सामने
देवताओं की महानता भी शरमाती है !
और अत्यन्त आदर से सर झुकाती है !

आनेवाली पीढ़ियाँ
जब गर्व से दोहरायेंगी कि हम इनसान हैं
तो उन्हें उँगलियों पर गिने जाने वाले
वे थोड़े से नाम याद आयेंगे
जिनमें तुम्हारा नाम बोलते हुए अक्षरों में
लिखा हुआ है !

पूज्य पिता,
सहृदय भाई,
विश्वस्त साथी, प्यारे जवाहर,
तुम उनमें से हो
जिनकी बदौलत
इनसानियत अब तक साँस ले रही है ।

❖❖❖

तूफानों का आगमन

सत्यधर शुक्ल

(1)

हिमगिरि के अन्तर में है ज्वालामुखी छिपा,
सागर की छाती में बड़वानल दहक रहा।
अम्बर से झरते हैं प्रतिहिंसा के अंगार
अवनी पर दावानल–जठरानल धधक रहा।
सब ओर कपट–छल–ईर्ष्या है, विद्वेष–द्रोह,
हिंसा–हत्या की ज्वालायें उफनाती हैं।
सब ओर नाचती नंगी होकर दानवता,
अन्यायों की आँधियाँ उमड़ती आती है।
दिखलाई पड़ता सभी ओर गर्दा–गुबार,
उठ रहा भयंकर चक्रवात भी भारी है।
संसार जा रहा, चला, विनाशों के पथ पर,
यह तूफानों के आने की तैयारी है।

(2)

जिस ओर देखता हूँ–अपराध मचलते हैं,
अत्याचारों की सीमायें भी टूट रहीं,
मर्यादा जैसी वस्तु लोक में शेष नहीं,
हैं आज किस्मतें सत्य–न्याय की फूट रहीं।
सच्चाई की गर्दन दबोच कर बैठा है,
पापाचारों का कपट भरा खूनी पंजा।
अब पुण्य उठा जाता है इस जगतीतल से,
हो रहा, प्रेम गंजा औ अपनापन लुंजा।
'तू तू' 'मैं मैं' आपाधापी 'हैया–दैया–
का सभी ओर स्वर उठता हाहाकारी है।
मानवता की दीवारें हिल,हिल ढहती हैं,
यह तूफानों के आने की तैयारी है।

❖❖❖

बारिश

जावेद आलम ख़ान

खिड़की से बूंदें देखकर लहकी लड़की
भीगने के लिए जब तक छत पर पहुँची
बारिश रुक चुकी थी
उसके तलवे सहलाने के लिए रह गई थी
केवल गीली छत
चेहरे पर पड़ती हवा में बूंदों की तासीर तो थी
मगर बूंदों की रोमांचक चोट न थी

बच्ची उदासी भरे लहजे में बोली
अब्बू मैं अम्मी से बारिश की शिकायत करूंगी
और यकायक मुझे भान हुआ
कि दरवाजे के पार होती बारिश से अनजान
मोबाइल की बोर्ड पर चलती अंगुलियों में खोया
असली कविता उधेड़कर नकली कविता बुन रहा हूँ
मैं कविता को छोड़कर महज कवि को सुन रहा हूँ

मुझे अहसास हुआ कि कविता और मुझमें
बस इतनी ही दूरी है
जितनी छत और जीने की सीढ़ियों में है
पास बैठे बाप और बेटी की पीढ़ियों में है
कि परिपक्वता कविता की नहीं कवि की मजबूरी है
कविता तो किसी छत पर बारिश में भीग रही होगी
और कवि समझदारी का लबादा ओढ़े
बालकनी में बैठकर हिकारत से देख रहा होगा

बस मैंने छत का दरवाजा खोला और पुकारा बेसाख्ता
जल्दी आओ अमायरा बारिश फिर से आई है

जीवन की सच्ची कविता मैंने अभी–अभी सीखी है
अपनी तीन साल की बेटी से

❖❖❖

प्रयास

डा. नरेश कात्यायन

पथ हो कठिन
और लक्ष्य हो अभेद्य जहाँ,
वहाँ निज प्राणों का
प्रकाश होना चाहिए।
जहाँ–जहाँ
टूटते कगार हों मनुष्यता के,
वहाँ–वहाँ
प्रीति का समास होना चाहिए।
फल तो सदैव रहता
अधीन ईश्वर के,
कर्मा की कला का ही
प्रभास होना चाहिए।
भले ही 'सम्पाती' की
तरह जल जाये पंख,
शक्ति भर
अपना प्रयास होना चाहिए।।

झर–झर नाद निर्झरों का, और पक्षियों का
कोलाहल, सृष्टि का विषाद हरने लगा।
हरिणों का झुण्ड यह निकल गया उधर,
निर्भय घूम हरी घास चरने लगा।
कोक और कोकी के वियोग की दिशा को काट,
प्रीति रश्मियाँ उरों में भानु भरने लगा।
रवि है नहीं यह व्योम क्षिति के श्रृंगार हेतु,
भाल पर तेज–पुंज बिन्दी धरने लगा।।

गहन–अरण्य द्रोण गिरि का अभेद्य वक्ष,
तम में घुला–घुला सा सजल समीर था।
वन्य–जन्तुओं से पशु, पक्षियों से जीवित जो,
औषधीश विपुल–सुगंध का अमीर था।
मानों कोई ऋषि हो, समाधि–लीन ध्यान–मग्न
'अमर–पुरी' में जीव 'मर्त्य' में शरीर था।
चारों ओर प्रकृति–नटी के नृत्य से विरक्त,
शिव की तपस्या के समान ही शरीर था।।

❖❖❖

भीड़ से खारिज आदमी

दिलीप दर्श

भीड़ से खारिज आदमी भले ही
हारा हुआ लगता है
कभी हारा हुआ नहीं होता
वह अकेला या बेसहारा हुआ लगता है
पर कभी अकेला या बेसहारा नहीं होता
भीड़ से खारिज आदमी का
सिर्फ और सिर्फ भूगोल ही होता है
कोई इतिहास नहीं होता
उसके पास नहीं होती कोई दूसरी संज्ञा
या एक भी विशेषण
अपने नाम के शुरु आखिर में लगाने के लिए
कोई शीर्ष– पूंछ नहीं होते
क्योंकि शीर्ष पूंछ मिलते हैं
सिर्फ इतिहास के संरक्षित अभयारण्य में
और वहाँ नाबाद हिलते हैं
किसी विजेता के फरमानी इशारों पर
भीड़ से खारिज आदमी पहले ही
खारिज कर चुका होता है ऐसे इशारों को
समय रहते इन्कार कर चुका होता है
शीर्ष और पूंछ के बीच हकलाती जिंदगी को
भीड़ से ख़ारिज आदमी
स्वीकार कर चुका होता है
शीर्ष–पूंछ विहीन अस्तित्व के अपने भूगोल को
वह पहचान चुका होता है
भीड़ में खड़े व्यवस्था के मदारी को
जान चुका होता है कि आज के दौर में
मदारी दरअसल एक संपेरा है
बजाता है नित नये सुरों में बीन दिन भर
बीन सांप के लिए है या भीड़ के लिए
यह एक बड़ा रहस्य है
और इस रहस्य को जिज्ञासा की खुजलाती
धूप से बचाने के लिए
बीच बीच में वह नए–नए अंदाज में दिखाता है
सांपों का खतरनाक खेल
पैदा करता है डर का ऐसा मायावी बाजार
जहाँ सांप आभासी रूप में और बड़े दिखते हैं
और डर वास्तविक रूप में उनसे भी इतना बड़ा कि
शाम तक जिज्ञासा से ज्यादा जरूरी हो जाते हैं
वे जंतर
जिन्हें बेचना हो जाता है तब बहुत आसान
और खरीदना भी बहुत जरूरी
भीड़ से खारिज आदमी जानता है
जंतर की असलियत
यह भी कि सांप दंतहीन है दरअसल
और डर एक झूठ है
सच यही है कि
भीड़ से जो बिल्कुल खारिज या अपदस्थ है
अपनी सोच में वही साफ है, वही स्वस्थ है

❖❖❖

महाराणा प्रताप-मेवाड़ का वीर योद्धा

नरेन्द्र मिश्र

राणा प्रताप इस भरत भूमि के, मुक्ति मंत्र का गायक है।
राणा प्रताप आजादी का, अपराजित काल विधायक है।।

वह अजर अमरता का गौरव, वह मानवता का विजय तूर्य।
आदर्शों के दुर्गम पथ को, आलोकित करता हुआ सूर्य।।

राणा प्रताप की खुद्दारी, भारत माता की पूंजी है।
ये वो धरती है जहां कभी, चेतक की टापें गूंजी है।।

पत्थर–पत्थर में जागा था, विक्रमी तेज बलिदानी का।
जय एकलिंग का ज्वार जगा, जागा था खड्ग भवानी का।।

लासानी वतन परस्ती का, वह वीर धधकता शोला था।
हल्दीघाटी का महासमर, मजहब से बढकर बोला था।।

राणा प्रताप की कर्मशक्ति, गंगा का पावन नीर हुई।
राणा प्रताप की देशभक्ति, पत्थर की अमिट लकीर हुई।

समराँगण में अरियों तक से, इस योद्धा ने छल नहीं किया।
सम्मान बेचकर जीवन का, कोई सपना हल नहीं किया।।

मिट्टी पर मिटने वालों ने, अब तक जिसका अनुगमन किया।
राणा प्रताप के भाले को, हिमगिरि ने झुककर नमन किया।।

प्रण की गरिमा का सूत्रधार, आसिन्धु धरा सत्कार हुआ।
राणा प्रताप का भारत की, धरती पर जयजयकार हुआ।।

❖❖❖

स्वर्णिम वरण

अखिलेश निगम 'अखिल'

निशापति!
तूने निशा–सुन्दरी का
किया है वरण,
जिसके भाग्य में था चतुर्दिक अँधेरा,
दुःख, दारिद्रय, कुरूपता का
घनघोर घेरा,
बन गए सुन्दरी के जीवन का
स्वर्णिम सवेरा।
किसी बात की न की तूने परवाह,
धन्य है तेरा प्रेम,धन्य है तेरी चाह,
समस्त ब्रह्माण्ड में कौन होगा ऐसा बलिदानी।
जिसकी ऐसी स्वर्णिम कहानी।
त्याग, तपस्या, अद्भुत बेमिसाल,
प्रेम की पावन ज्योति ज्वाल।

निस्वार्थ निशा–सुन्दरी का किया
स्वर्णिम वरण,
धन्य तेरी सदाशयता, धन्य तेरे चरण।
कितना तू पूजनीय, कितना महान,
विश्व का हर प्राणी करता सम्मान ।
निरन्तर सम्मान।।

❖❖❖

मंजिल

रविन्द्र कुमार 'राजेश'

उठ नहीं सकते हैं जो उनको उठाने के लिए,
बढ़ न पाये आज तक उनको बढ़ाने के लिए।

आये हैं वे लोग ही, उनको गिराते जो रहे,
जाहिरा हमदर्द बन, उनको लुभाते जो रहे।

खींच लेते टाँग फौरन जो जरा बढ़ने लगा,
ली हटा सीढ़ी अधर में, कोई जो चढ़ने लगा।

स्वार्थी से दूसरों का क्या भला कर पायेंगे,
जो गिराते ही रहे, तुमको, उठा क्या पायेंगे?

हौसला उठने का है, हिम्मत से खुद अपनी उठो,
और बढ़ने के लिए दिन–रात मेहनत में जुटो।

एक दिन 'राजेश' मंजिल पास खुद आ जायेगी,
खुद उठो, सबको उठाओ, जिन्दगी उठ जायेगी।

❖❖❖

तुम्हारी राह

योगेश दयालु

अब तक जान नहीं पाया क्यों
मुझको राह तुम्हारी भायी।

कितने अस्वीकार कर चुका अधरों के मादक आमंत्रण,
ठुकराये मैंने यौवन के कितने विह्वल आत्मसमर्पण।
पलक पाँवड़ों पर चलने का सुख मुझको स्वीकार नहीं है
तपोभूमि में खिंच आया हूँ जाने कैसा है आकर्षण,

चलने को हैं राह बहुत पर
मुझको राह तुम्हारी भायी।

मेरे पग–पग पर जीवन में लहराया यौवन का सागर,
एक बूँद की प्यास बुझी कब अब तक तो रीती है गागर,
मन की व्यथा–कथा कहने का मैंने जब–जब अवसर चाहा
तुमने संयम–मंत्र दे दिया और किया क्षण में विषयन्तर,

अपने आचरणों पर मुझको
प्रखर निगाह तुम्हारी भायी।

❖❖❖

उस दिन गिर रही थी नीम की एक पत्ती

उदय प्रकाश

नीम की एक छोटी सी पत्ती हवा जिसे उड़ा ले जा सकती थी किसी भी ओर
जिसे देखा मैंने गिरते हुए आंखें बचाकर बायीं ओर
उस तरफ आकाश जहां ख़त्म होता था या शुरू उस रोज
कुछ दिन बीत चुके हैं या कई बरस आज तक
और वह है कि गिरती जा रही है उसी तरह अब तक स्थगित करती समय को

इसी तरह टूटता–फूटता अचानक किसी दिन आता है जीवन में प्यार
अपनी दार्ष्ण जर्जरता में पीला किसी हरे–भरे डाल की स्मृति से टूटकर अनाथ
किसी पुराने पेड़ के अंगों से बिछुड़ कर दिशाहारा
हवा में अनिश्चित दिशाओं में आह–आह बिलखता दीन और मलीन
मेरे जीवन के अब तक के जैसे–तैसे लिखे जाते वाक्यों को बिना मुझसे पूछे
इस आकस्मिक तरीके से बदलता हुआ
मुझे नयी तरह से लिखता और विकट ढंग से पढ़ता हुआ

इसके पहले यह जीवन एक वाक्य था हर पल लिखा जाता हुआ अब तक किसी तरह
कुछ सांसों, उम्मीदों, विपदाओं और बदहवासियों के आलम में
टेढ़ी–मेढ़ी हैंडराइटिंग में, कुछ अशुद्धियों और व्याकरण की तमाम ऐसी भूलों के साथ
जो हुआ ही करती हैं उस भाषा में जिसके पीछे होती है ऐसी नगण्यता
और मृत या छूटे परिजनों और जगहों की स्मृतियां

प्यार कहता है अपनी भर्राई हुई आवाज में – भविष्य
और मैं देखता हूं उसे सांत्वना की हंसी के साथ
हंसी जिसकी आंख से रिसता है आंसू
और शरीर के सारे जोड़ों से लहू

वह नीम की पत्ती जो गिरती चली जा रही है
इस निचाट निर्जनता में खोजती हुई भविष्य
मैं उसे सुनाना चाहता हूं शमशेर की वह पंक्ति
जिसे भूले हुए अब तक कई बरस हो गए ।

❖❖❖

गुमशुदगी

लीलाधर मंडलोई

दिल को संभाले हुए हिम्मत से
यह सियाह ठिगना जिस्म गुमशुदगी में
कुछ बचाके रोज भरता है
फीकी सी मुस्कुराहट
गर्मी हरारत की
और कुछ छुअन कि चंद हाथ तो हैं
गो लड़ना इस तरह बड़ी हिमाकत है
जैसे खांचे में सांस भरता हुआ
जैसे खपरैल से उठता धुंआ मटैला–सा
जैसे जागती टांगों पर नींद में चौकस
जैसे हर तरकीब लड़ने में नाकाफी
एक धनुष हूं बेआवाज अभी शाम हुई
एक उस शंख–सा जो बिल्कुल अभी चुप हुआ
रात के मैदान में हर तरफ दुश्मन
कत्ल के वास्ते पंजों में धार भरते हुए
और मैं कि वक्त की नब्ज पर उंगलियां चटकाता
उसे थाम लेने की जिद में अटका–ठहरा सा
गंध दुश्वारियों की है जिस डगर घूमूं
अपनी जद में कि अपनी नजर के पार
मैं इम्तिहान में हूं, ये रात बड़ी भारी है

❖❖❖

बाँह सुधि की थाम

चक्रपाणि पाण्डे

टूटती सी कह रही निःश्वास मन की,
दूर मत जाना, कि फागुन आ रहा है।
लौट आ जाना कि फागुन आ रहा है।।

बाँह सुधि की थामकर, हम समय से काफी लड़े हैं,
पर अभी उस पार तुम, इस पार हम बेबस खड़े हैं।
बीच में बहती अगम जलाराशि इसका क्या ठिकाना।।
पास आ जाना कि फागुन आ रहा है।।
दूर मत जाना कि फागुन आ रहा है।।

बाँचती सी मंत्र सम्मोहन चली आती हवायें
आज फिर पाती मिली गुमनाम हम किस को बतायें
स्वंय को कैसे बचायें, कौन सा ढूँढे बहाना।।
यह बता जाना कि फागुन आ रहा है।।
दूर मत जाना कि फागुन आ रहा है।।

हर नयन है इन्द्रधनुषी नेह आमंत्रण सजाये,
मुग्ध मन अनगिन अपरिचित नेह सीमा लाँघ आये
किन्तु मेरे और तेरे बीच वह ही भ्रम पुराना
फिर न दुहराना कि फागुन आ रहा है।
दूर मत जाना कि फागुन आ रहा है।

❖❖❖

विदा

अशोक वाजपेयी

तुम चले जाओगे,
पर थोड़ा–सा यहाँ भी रह जाओगे।
जैसे रह जाती है,
पहली बारिश के बाद–
हवा में धरती की सोंधी–सी गंध।
भोर के उजास में
थोड़ा–सा चंद्रमा।
खंडहर हो रहे मंदिर में,
अनसुनी प्राचीन नूपुरों की झंकार।

तुम चले जाओगे,
पर थोड़ी–सी हँसी,
आँखों की थोड़ी–सी चमक,
हाथ की बनी थोड़ी–सी कॉफी,
यहीं रह जायेगे
प्रेम के इस सुनसान मेंद्य

तुम चले जाओगे,
पर मेरे पास
रह जाएगी–
प्रार्थना की तरह पवित्र–
और अदम्य
तुम्हारी उपस्थिति,
छंद की तरह गूँजता
तुम्हारे पास होने का अहसासद्य

तुम चले जाओगे
और थोड़ा–सा यहीं रह जाओगेद्य

❖❖❖

तिमिर कहीं कितना गहरा हो

केसरीनाथ त्रिपाठी

तिमिर कही कितना गहरा हो,
मन में दीप जला करता है।
कोई कितना रहे अकेला,
मन में मीत पला करता है।

धरती से अम्बर तक विस्तृत,
भिन्न–भिन्न आकर्षण कोहरे।
हर पल नयी लालसा जगती,
तृष्णा–गीत छला करता है।

मुझ पर प्रश्न उठाने वालों,
व्यर्थ में दोष लगाने वालों।
पीर भरे नयनों का काजल,
हिमगिरि बन पिघला करता है।

❖❖❖

विस्मृति

कुमार अंबुज

एक दिन गड्डमड्ड होने लगती हैं, चीजें, क्रियाएँ,
नाम, चेहरे और सुपरिचितताएँ।
फिर तुम स्मृति का पीछा करते हो,
जैसे बचपन की उस नदी का जो अब निचुड़ गई है।
और हाँफते हुए समझने की कोशिश करते हो–
कि विस्मृति ही अन्तिम अभिशाप है या कोई वरदान।

कुछ याद करना चाहते हो तो एक परछाईं–सी दिखती है,
जो विलीन हो जाती है किसी दूसरी परछाईं में।
इस अनुभव के आगे सारे दुख फीके हैं और बीत चुके हैं।
दूर कहीं तुम उनकी तरफ देखकर मुस्करा सकते हो।
लेकिन उनके मुखड़े याद नहीं आते,
यही असहायता है, इतनी ही शेष रह गई है ताकत।

ईष्यायें याद नहीं आ रहीं, क्रोध के सूर्य अस्ताचल हुए।
प्रेम के चन्द्रमा डूब गए, वासनाएँ जारी हैं।,
जाने कैसे बची रह गई है स्पर्श की आदिम स्मृति,
किसी को न पहचानने से अब कोई अपमानित नहीं होता।
अगर पहचान लो तो वह अप्रतिम ख़ुशी से भर जाता है।

कोरी हो चली स्लेट पर लिखी जा रही हैं नई इबारतें–
और सबक हैं कि याद नहीं रह पाते ।

❖❖❖

भारत भूमि हमारी

माधव शुक्ल

भारत भूमि हमारी भाई, भारत भूमि हमारी।

और न कोई इस मंदिर का हो सकता अधिकारी,
भारतवासी ही हम इसके रक्षक और पुजारी।
भाई, भारत भूमि हमारी।

आज जो यह तुम देख रहे हो महलें और अटारी,
लगा रक्त का गारा इसमें, तन की ईंट हमारी।
भाई, भारत भूमि हमारी।

तन–मन देकर हमने सजाई यह सुन्दर फुलवारी,
फूल सूँघ लो पर न तोड़ना मर्जी बिना हमारी।
भाई, भारत भूमि हमारी।

जग सर बिच यह नीलकमल सम विकसित मुनि–मन हारी,
हम तिसके मधु पीवनहारे कारे भ्रमर सुखारी।
भाई, भारत भूमि हमारी।

रत्नवती इस वसुंधरा के इक हम ही भंडारी,
'माधव' इस यशुमति के सुत हम कृष्ण, गोप हलधारी।
भाई, भारत भूमि हमारी।

❖❖❖

अमर शहीदों का नमन

डॉ. रामाश्रय सविता

ये देश देवता है, इनको करो, नमन।
ये देश देवता है, इनको करो, नमन।

विश्वास देवता है, इनको करो, नमन।
प्रवास देवता है, इनको करो, नमन।

अनुराग देवता है, इनको करो, नमन।
ये त्याग देवता है, इनको करो, नमन।

प्रणवीर देवता है, इनको करो, नमन।
रणधीर देवता है, इनको करो, नमन।

ये त्राण देवता है,इनको करो, नमन।
ये प्राण देवता है, इनको करो, नमन।

आचार देवता है, इनको करो, नमन।
साकार देवता है, इनको करो, नमन।

ये धैर्य देवता है, इनको करो, नमन।
ये शौर्य देवता है, इनको करो, नमन।

निस्वार्थ देवता है, इनको करो, नमन।
पुरुषार्थ देवता है, इनको करो, नमन।

ये स्वर्ग देवता है, इनको करो, नमन।
अपवर्ग देवता है, इनको करो, नमन।

अनुगम्य देवता है, इनको करो, नमन।
अतिरम्य देवता है, इनको करो, नमन।

बलिदान देवता है, इनको करो, नमन।
सन्धान देवता है, इनको करो, नमन।

❖❖❖

बोल तोता, बोल

रामदेवसिंह 'कलाधर'

हरें रंग का एक–एक 'पर',
लाल चोंच है कितनी सुन्दर।
लाल फूल की माला दी है–
किसने तुझे अमोल?
बोल तोता, बोल।

कौन कला का शिक्षक तेरा,
जिसने रंग गले पर फेरा।
किस विद्यालय में तू पढ़ता?
मौन न रह, मुँह खोल।
बोल तोता, बोल।

साथी तुझे बनाना आता,
'सीता–राम' पढ़ाना आता।
और किसी से प्रेम करेगा?
यह दुनिया है, गोल।
बोल तोता, बोल।

मुझको भी उड़ना सिखला दे,
पके, 'कलाधर' सुफल खिला दे।
दिया करूँगा मैं भी क्षण–क्षण,
कानों में मधु घोल।
बोल तोता, बोल।

❖❖❖

नानी की नाव

हरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय

नाव चली, नानी की नाव चली,
नीना की नानी की नाव चली।

लंबे सफर पे
आओ चलो,
भागो चलो,
जागो चलो,
आओ,आओ!

नाव चली, नानी की नाव चली,
नीना की नानी की नाव चली।

सामान घर से निकाले गये,
नानी के घर से निकाले गये,
इधर से ऊपर से निकाले गये,
नानी की नाव में डाले गये!

एक घड़ी–एक घड़ी,
एक झाड़ू–एक लाडू,
एक संदूक–एक बंदूक,
एक सलवार, एक तलवार,
एक घोड़े की जीन–एक ढोलक, एक बीन,
एक घोड़े की नाल–एक मछुए का जाल,
एक लहसुन,एक आलू–एक तोता, एक भालू,
एक डोरा, एक डोरी–एक बोरा, एक बोरी,
एक डंडा, एक झंडा–एक हंडा, एक अंडा,
एक केला,एक आम–एक किशमिश, एक बादाम,
एक पक्का, एक कच्चा–एक बिल्ली, एक बिल्ली का बच्चा।

नाव चली, नानी की नाव चली,
नीना की नानी की नाव चली!

❖❖❖

घूम हाथी, झूम हाथी

विद्याभू ाण 'विभु'

हाथी झूम–झूम–झूम,
हाथी घूम–घूम–घूम।

राजा झूमें, रानी झूमें, झूमें राजकुमार,
घोड़े झूमें फौजें झूमें, झूमें, सब दरबार।
झूम ,झूम, घूम हाथी, घूम, घूम–झूम हाथी।

हाथी झूम–झूम–झूम,
हाथी घूम–घूम–घूम।

धरती घूमें, बादल घूमें सूरज चाँद सितारे,
चुनिया घूमें, मुनिया घूमें, घूमें राज दुलारे।
झूम,झूम,घूम हाथी, घूम घूम–झूम हाथी।

हाथी झूम,झूम,झूम,
हाथी घूम,घूम,घूम।

राज महल में बाँदी झूमें, पनघट पर पनिहारी,
पीलवान का अंकुश घूमें, सोने की अम्बारी।
झूम,झूम,घूम हाथी, घूम,घूम,झूम हाथी।

हाथी झूम,झूम,झूम,
हाथी घूम,घूम,घूम।

❖❖❖

शक्ति हमें दो

मुरारीलाल शर्मा 'बालबंधु'

वह शक्ति हमें दो दयानिधे, कर्तव्य मार्ग पर डट जावें,
पर–सेवा पर–उपकार में हम, जग–जीवन सफल बना जावें।

हम दीन–हीन निबलों–विकलों के सेवक बन संताप हरें,
जो हैं अटके, भूले–भटके, उनको तारें खुद तर जावें।

छल, दंभ–द्वेष, पाखंड–झूठ, अन्याय से निशिदिन दूर रहें,
जीवन हो शुद्ध सरल अपना, शुचि प्रेम–सुधा रस बरसावें।

निज आन–बान, मर्यादा का प्रभु ध्यान रहे अभिमान रहे,
जिस देश–जाति में जन्म लिया, बलिदान उसी पर हो जावें।

❖❖❖

बही एक रसधारा है

डा. मृदुला शुक्ला 'मृदुल'

यहाँ न कोई हिन्दू–मुस्लिम–
सिक्ख–पारसी–ईसाई।
केवल भारतीय हैं हम सब,
सभी यहाँ भाई–भाई।

जैसे हमको प्यारा मन्दिर,
वैसे मस्जिद–गिरिजाघर।
मस्जिद का है खुदा वही जो,
मन्दिर–गिरिजा का ईश्वर।

आपस का यह भेद–भाव है,
केवल ऊपर का अन्तर।
इसके पीछे प्रेम–भाव का,
लहराता रहता सागर।

पूरब–पश्चिम–उत्तर–दक्षिण,
बही एक रसधारा है।
एक हमारा ध्वजा तिरंगा
एक हमारा नारा है।

❖❖❖

डूबती-उभरती तन्हाइयाँ

डॉ. ऋचा सत्यार्थी

कभी–कभी
रात के अंधेरों में
खामोशी का जन्म होता है।
गर, कोई साथ न हो
तो सन्नाटे साथ देते हैं,
तन्हाई डूब जाती है।

कभी–
आईने की चमकीली सतह पर,
एक खुद को दो होते पाकर।
टुकड़े–टुकड़े अस्तित्व का
एहसास होता है।
और कभी
पारदर्शी सतहों के पीछे उभरती हैं,
कुछ रंग बदलती तस्वीरें।
तो उस क्षण
अहसास के आईने में
उतरती चली आती हैं,
कुछ अनुभूतियाँ–
या तन्हाइयाँ
और आईने में
चिटकते नहीं भी
तो बिखर जरूर जाते हैं।
कुछ अक्स
शायद अपने
शायद पराये।

रोज यूँ ही
सन्नाटों में दम तोड़ती तन्हाई।
आदमकद आईनों में
फिर–फिर
जन्म लेती है।

❖❖❖

छोटी सरिता हूँ

पुष्पा सुमन

मैं छोटी सरिता हूँ, लेकिन,
सागर का सम्मान मिला है।
टूट–टूट कर बरफ गली तब,
पानी–पानी रूप मिला है।
पर्वत–पर्वत, जंगल–जंगल
मुझको पंथ अनूप मिला है।
पल भर को विश्राम नहीं है
गति को वह सन्धान मिला है।।

संग–संग रहे किनारे लेकिन,
मुझे न मिला सहारा कोई।
मैंने अपने जनम–जनम की,
पीड़ा अपने जल में धोई।
मेरी लहरों की खुशियों का,
पुरवा से वरदान मिला है।।

कभी बढ़ी तो बिखर गयी, पर–
उतरी तो अपने में आयी।
बढ़ने या घटने में मैंने,
खुद भी अपनी थाह न पाई।
अपना स्वाभिमान रक्खा तो,
दुनियाँ से भी मान मिला है।
मैं छोटी सरिता हूँ लेकिन,
सांगर का सम्मान मिला है।।

❖❖❖

नयनों का वृन्दावन

स्नेहा मिश्रा

पतक्षर में आभास कराता सान का–
नयनों का आमंत्रण कितना प्यारा है।

हरियाली फूटी पेड़ों से,
बूढ़े वन उतरी तरुणाई,
भोर उगे ही किरणें जागी–
दिसि–दिसि फैल गई अरुणाई,

मरुस्थल में विश्वास जगा चन्दन वन का
नयनों का आकर्षण कितना प्यारा है।

दुनिया से क्या लेना–देना,
सबकी अपनी–अपनी भाषा,
कोई भटके उजियारे में,
नदी किनारे कोई प्यासा।

सूने–पन में बिंब दिखा मन–भावन का–
नयनों का अल्हड़पन कितना प्यारा है।

सुधियों के घर उत्सव है,
राधा कुंजों में शरमाई,
अस्ताचल की ओर अकेले,
सूरज ढला, चाँदनी आई,

आँगन–आँगन, रास रचा सम्मोहन का,
नयनों का वृन्दावन कितना प्यारा।।

❖❖❖

चारों ओर

विद्या तिवारी

लगें मेरी अँखियाँ चारों ओर।

तुम्हारे चरण चिन्ह नित ढूढ़ें,
करें, तुम्हारी खोज।
अन्तर बाहर तुम्हे निहारें
लखे चरण दृग कोर।

चरण देखि मन अति हर्षाये
मिटे जगत का शोर।
जगत शोर को आदि अन्त ना,
डरपत है, मन मोर।

जीवन मृत्यु सुख दुख घेरें
द्वन्द्व झूठ का जोर।
पर असत्य जग उछरे, बूड़े,
पाप–पुण्य झकझोर।

जग असार में सार तुम्हीं हो,
तुम्हें लखें चहुँ ओर।
विद्या तुम्हें निरखि मन हरषे,
भव का ओर न छोर।

❖❖❖

झाँक-झूँक

डॉ. शान्ति देव बाला

गुलमोहर खिला डाल–डाल पात–पात।
ज्यों,
चटक लाल फूलों के छापे वाला,
छाता खोले गोल ।
किशोर खड़ा है सड़क किनारे,
रह,रह उचक उचक देखता।
कहीं,
अमलतास की घंटी नुमा,
झुमकों सी फूलों वाली,
पियरी चुनरिया ओढ़े,
यह किशोरी अल्हड़ वातास,
कहीं ऐसा न हो निकल जाये–
मुझसे बिन बोले।
हर आहट, उसकी पदचाप मानता,
रोम–रोम खिल जाता।
मनचला रक्ताभ होता,
झाँक झूँक करता,
ऊपर नीचे डोलता,
यह गुलमोहर किशोर सा।

❖❖❖

होरी अति सुखदायी

कृष्ण कुमार वर्मा

होरी अति सुखदायी, मनभायी आज।

कहुँ गुनगुनात सब भ्रमर सदृश, अरु गावत मृदुल उमंग आज,
सब नाचत गावत मोद भरे, अस देखि–देखि हर्षात आज।
होरी अति सुखदायी, मनभायी आज।।

सब बालक, वृद्ध, युवा, नर नारिन, कै मन उठत तरंग आज,
सब नारि भयीं ब्रजबाला सम, अरु नर लागे ब्रजराज आज।
होरी अति सुखदायी, मनभायी आज।।

कोऊ मृदुल भाव रस अंगूरन की, मदिरा लेकर साथ आज,
कोऊ स्वयं पियत अरु कोऊ पियावत, प्रियतम सब बनि जात आज।
होरी अति सुखदायी, मनभायी आज।।

आनन्द विभोर भये लखि के, जड़ चेतन, बाग तड़ाग आज,
मन को निर्मल करि देत पर्व, हम फूले नाहिं समात आज।
होरी अति सुखदायी, मनभायी आज।।

हे री त्याग देत संकोच सबहिं, जन प्रमुदित मन मुस्कान आज,
युग–युग के बैर भाव तजि के, सब करत सहर्ष मिलाप आज।
होरी अति सुखदायी, मनभायी आज।।

❖❖❖

आगे आना चाहिए

जगदीश शुक्ल

माँगते दहेज लोग उनका विरोध आज,
युवा कर सकें उन्हें आगे आना चाहिए।

सीधी उँगली से यदि घी नहीं निकलता तो,
हमें उँगली को थोड़ा सा झुकाना चाहिये।

लालची दहेज के जो लालच में पड़े उन्हें,
जेल की सलाखें में ही भिजवाना चाहिए।

स्वावलम्बी बनने की आदत बना के निज,
जीवन में पुरुषार्थ को जगाना चाहिए।।

बलिदानों का अर्थ

आजादी का मुफ्त मजा लूट रहे आज हम,
किन मुश्किलों से मिली कैसे भला मानेंगे।

काँटों पर चले नहीं भूखे कभी सोये नहीं,
उन अहसासों को क्या खाक हम जानेंगे।

फाँसी का जो चूमे फंदा और फिर झूल गये,
उनके जुनून को क्या हम पहचानेंगे।

बलिदानों का न अर्थ समझ सकेंगे हम,
आन–बान–शान की जो ठान नहीं ठानेंगे।।

❖❖❖

जोगी

केशव तिवारी

एक तारा का तार तो
सुरो से बंधा है
तुम्हारा मन कहाँ बंधा है, जोगी?
इस अनासक्ति के पीछे
झाँक रही है एक गहरी आसक्ति।
यह विराग जिसमें रह – रह
गा उठता है,
तुम्हारा जीवन राग
तुम्हारे पैर तो भटकन से बँधे है
ये निर्लिप्त आँखे कहाँ
देखती रहती हैं, जोगी।
प्रेम यही करता है, जोगी,
डुबाता है उबारता है,
भरमाता है, भरमाता है।
तुम्हारा निर्गुन तो
कुछ और कह रहा है,
पर तुम्हारी साँसे
तो कुछ और पढ़ रही हैं, जोगी।

❖❖❖

जीवन-दृष्टि

अवधेश प्रताप सिंह

आज उठे हैं भाव–विकल थे,
तुमको मात्र बुलाने को।
मौन निमन्त्रण देती आँखें,
तुम को आकर छिप जाने को।

पूछो मत परवशता क्या है,
तुमसे न व्यक्त कर पाने की।
अभिव्यक्ति छीन ली प्रज्ञा ने,
दी सीख मौन अपनाने की।

पुतला बन मानव जीता है,
इच्छा को रोज दबाता है।
प्रज्ञा की अँगुली थाम नित्य,
समझौतों पर आ जाता है।

कातरता–प्रज्ञा से आती,
निर्ममता अधिक बढ़ा जाती।
सुख–शान्ति मनुजता मानव की,
सब धूल–धूसरित हो जाती।

मेरे शुभचिन्तक कहते हैं,
प्रज्ञा का ही अनुगमन करो।
भावों की झूठी नगरी में,
मत जीवन–धन उत्सर्ग करो।

मैं पूछ रहा उनसे सविनय,
मुझको अपराधी भाव भरे?
निष्काम–साधना में तपना,
क्या दोषी का पर्याय, अरे!

यहाँ सच है कल को जाने कब,
जल–जलकर बुझ जाना होगा।
जीवन की पूर्णाहुति होते,
जग छोड़ कहीं जाना होगा।

इसमें चिंता की बात कहाँ,
आना–जाना जीवन का क्रम।
यह है जब इतना क्षणभंगुर,
करना तब कहाँ उचित मातम।

❖❖❖

शंखनाद कीजिये

अशोक कुमार पाण्डेय अनहद

नीति कृष्ण जैसी, न्याय विक्रम सरीखा और,
राम के चरित्र का पीयूष नित्य पीजिये।

ज्ञान मातु शारदे से, एक दन्त से बुद्धि,
सूर्य के समान जग को प्रकाश दीजिये।

तप भगीरथ सम, त्याग हो दधीचि वाला,
भक्ति का प्रसाद हनुमान जी से लीजिये।

धरनि की धीरता, गम्भीरता उदधि की हो,
साहस सुभाष का ले शंखनाद कीजिये।

रात है

आ गई दीवाली लिये ढेरों खुशहाली, आज–
जन–जन, तन–मन पुलकित गात है।
आसुरी प्रवृत्ति वाली हारी है बुराई जब,
धर्म रूपी राम ने रावण को दी मात है।
चहुँ ओर जग–मग, झिल–मिल, धाँय–धम्म,
इन्द्र पुर से ही मानो उतरी बारात है।
भ्रमित मैं काली या उजाली या कि विधना ने,
रच डाली सबसे निराली यह रात है।

❖❖❖

सृजन स्मरण

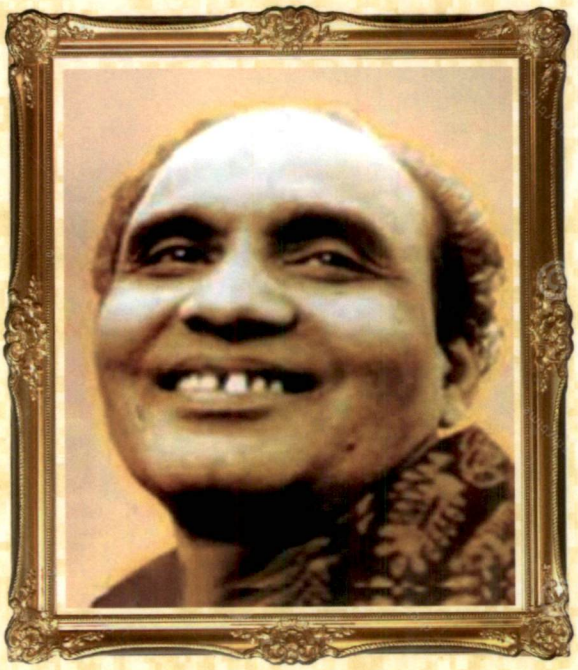

गिरजा कुमार माथुर

जन्म- 22 अगस्त 1919, निधन- 10 जनवरी 1994

बरसों के बाद कभी,
हम तुम यदि मिलें कहीं,
देखें कुछ परिचित से,
लेकिन पहिचानें ना।
याद भी न आये नाम,
रूप, रंग, काम, धाम,
सोचें,यह सम्भव है–
पर, मन में मानें ना।
हो न याद, एक बार,
आया तूफान, ज्वार,
बंद, मिटे पृष्ठों को–
पढ़ने की ठाने ना।
बातें जो साथ हुईं,
बातों के साथ गयीं,
आँखें जो मिली रहीं–
उनको भी जानें ना।

शंकर शैलेन्द्र

जन्म- 30 अगस्त 1923, निधन- 12 दिसम्बर 1966

जिस ओर करो संकेत मात्र, उड़ चले विहग मेरे मन का,
जिस ओर बहाओ तुम स्वामी,बह चले श्रोत इस जीवन का।
तुम बने शरद के पूर्ण चाँद, मैं बनी सिन्धु की लहर चपल,
मैं उठी गिरी पद चुम्बन को, आकुल–व्याकुल, असफल प्रतिपल।
जब–जब सोचा भर लूँ तुमको अपने प्यासे भुज बन्धन में,
तुम दूर क्रूर तारक बन कर, मुस्काए निज नभ आँगन में,
आहें औ फैली बाहें ही इतिहास बन गईं जीवन का।
जिस ओर करो संकेत मात्र, उड़ चले विहग मेरे मन का।
तुम काया, मैं कुरूप छाया, हैं, पास–पास पर दूर सदा,
छाया काया होंगी न एक, है, ऐसा कुछ ये भाग्य बदा।
तुम पास बुलाओ, दूर करो, तुम दूर करो, लो, बुला पास,
बस इसी तरह निस्सीम शून्य में डूब रही हैं, शेष श्वास।
हे अद्‌भुत, समझा दो रहस्य, आकर्षण और विकर्षण का।
जिस ओर करो संकेत मात्र, उड़ चले विहग मेरे मन का।